International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 299-304

साहित्येतिहासकारों की दृष्टि और 'उत्तरमध्यकाल'

भारती
पीएच.डी 'हिन्दी', दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
साहित्येतिहास, साहित्य की परम्परा और उसके विकासशील स्वरूप को दिखता है। साहित्येतिहासकारों ने उत्तर मध्यकाल को अपनी -अपनी दृष्टि से परखने की कोशिश की है। शुक्ल जी की दृष्टि विधेयवादी है, हजारी प्रसाद द्विवेदी परम्परा को महत्व देते है तो विश्वनाथ प्रसाद मिश्र उत्तरमध्यकाल को युगीन परिस्थितियों में रखकर देखते है।परंतु एक बात जो इन तीनों ही साहित्येतिहासकारों की दृष्टि का उपेक्षा पात्र बनी, वह है 'स्त्री लेखन'। क्या उत्तरमध्यकाल में कोई भी स्त्री लेखिका नहीं थी? इनके साहित्येतिहास लेखन में एक भी रीतिकालीन स्त्री लेखिका का नाम तक नहीं है। हाँ इस सन्दर्भ में डॉ बच्चन सिंह ने अपने साहित्येतिहास में रीतिकालीन संत काव्य परम्परा में 'दयाबाई'और 'सहजोबाई'को शामिल किया है। डॉ सावित्री सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ'में 'उत्तरमध्यकाल'की स्त्री लेखिकाओं के काव्य पर गंभीरता से विचार किया है। प्रवीणराय, रूपवती बेगम, शेख रंगरेज एवं सुन्दरकली इत्यादि अनेक स्त्री लेखकाओं को शामिल किया है। वस्तुतः साहित्येतिहासकारों की उत्तरमध्यकाल संबंधी दृष्टि उसके रीति पक्ष पर ही अधिक केंद्रित है। साहित्येतिहास लेखन में केवल साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियों एवं कवियों पर ही बल नहीं दिया जाता, बल्कि गौण कवियों एवं प्रवृत्तियों को दिखाना भी साहित्येतिहासकार का लक्ष्य होता है। हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल की आलोचना उसके रीति पक्ष को लेकर अधिक की गई है जबकि उस काल के साहित्य में अन्य प्रवृत्तियाँ भी मौजूद है। अतः आज जब हमारे पास साहित्येतिहास को देखने की अनेक दृष्टियाँ और सामग्री मौजूद है तो इस काल के साहित्य पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए।

मूल शब्द: साहित्येतिहास, परम्परा, विकासशील, उत्तरमध्यकाल

प्रवस्ताना

साहित्येतिहास, साहित्य की परम्परा और उसके विकासशील स्वरूप को दिखता है। साहित्येतिहास को अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है। डा. आनंदनारायण शर्मा साहित्येतिहास का अर्थ साहित्य की विकासमान परम्परा, उसके जन्म से लेकर अद्यतन स्थिति तक के क्रमबद्ध अध्ययन को मानते हैं। [1]रेनेवेलेक साहित्य के इतिहास का प्रयोजन साहित्य की प्रगति, परम्परा, निरंतरता और विकास की पहचान कराने से जोड़कर देखते हैं तो मैनेजर पाण्डेय साहित्य के इतिहास का आधार 'साहित्य के विकासशील स्वरूप की धारणा'[2] में देखते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य के इतिहास को 'जनता की चित्तवृत्ति के संचित प्रतिबिम्ब'[3]के रूप में देखते हैं। हिन्दी भाषा के इतिहास लेखन का आरम्भ 1839 ई०में गार्सा द तासी के ग्रन्थ 'इस्तवार द ला लितरेत्युर ऐंदुई ऐंदुस्तानी' से माना जाता है। यह फ्रेंच भाषा में लिखा गया है। इससे पहले भी इतिहास लेखन के प्रयास हुए है, जैसे नाभादास का 'भक्तमाल', 'वार्ता साहित्य', 'कविमाला', 'कालिदास हज़ारा', 'रागकल्पद्रुम' इत्यादि। परंतु इन सभी ग्रंथों में ऐतिहासिकता का निर्वाह नहीं हुआ है। ये सभी ग्रंथ एक आधार सामग्री के रूप में सहायक प्रतीत होते है। ये व्यवस्थित साहित्येतिहास के ग्रन्थ नहीं है। बाद के साहित्यितिहासकारों ने इनसे आधार ग्रहण किया है। गार्सा द तासी के बाद साहित्यितिहासकारों में शिवसिंह सेंगर, जॉर्ज ग्रियर्सन और मिश्रबन्धु के साहित्येतिहासकार ग्रंथ सामने आते है। परंतु ये भी व्यवस्थित रूप में नहीं लिखे गए है। इसलिए हिन्दी साहित्य का प्रथम व्यवस्थित साहित्येतिहास ग्रन्थ आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929) माना जाता है। साहित्येतिहासकारों की 'उत्तरमध्यकाल' संबंधी दृष्टि को

इस काल के नामकरण, कालविभाजन, सीमांकन, साहित्यिक प्रवृतियों एवं भाषा के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। यहाँ साहित्येतिहासकारों में रामचंद्रशुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी और विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की 'उत्तरमध्यकाल' संबंधी दृष्टि केंद्र में है।

'नामकरण'को लेकर साहित्येतिहासकारों की दृष्टि को देखें तो 'उत्तरमध्यकाल' के नामकरण को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। मिश्रबंधु ने इस काल को 'अलंकृत काल' कहा है, शुक्ल जी ने 'रीतिकाल', रामकुमार वर्मा ने इसे 'कला काल' तो डॉ रसाल ने इसे 'काव्य कला काल' नाम दिया है। विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इसे 'श्रृंगारकाल' कहा है। मुख्य विवाद 'रीतिकाल' और 'श्रृंगारकाल' को लेकर है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को 'रीतिकाल' नाम में 'रीति' शब्द बह्यार्थ का बोधक प्रतीत होता है, आभ्यंत्रार्थ का नहीं। इनका मानना है कि इस काल का आभ्यन्तर विषय 'श्रृंगार' था। वीर रस की रचना करने वाले कवियों को भी ये श्रृंगार रस से कोरे नहीं मानते हैं। ये लिखते है- "आलम, ठाकुर, घनानंद, बोधा, द्विजदेव 'रीति' की सीमा में नहीं समा सकते। "[4]इसलिए ये इस काल को 'श्रृंगार काल'की संज्ञा देते हैं। शुक्ल जी इस काल को 'रीतिकाल' नाम देते हैं परंतु शुक्ल जी 'श्रृंगारकाल' नाम पर कोई विशेष आपत्ति नहीं दिखाते है। वह लिखते है- "वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल को कोई रस की दृष्टि से 'श्रृंगारकाल'कहे तो कह सकता है।"[5]

डॉ महेंद्रकुमार को 'श्रृंगारकाल' नामकरण में अव्याप्ति दोष दिखाई देता है। उनका मानना है कि 'इस दशा में वीर, भक्ति आदि श्रृंगारेतर रसों में रचे गए तथा काव्यांग-विवेचन की दृष्टि से लिखित अनेक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध लक्षणग्रंथ इसकी परिसीमा में न आ सकेंगे'। [6]यहाँ साहित्येतिहासकारों की नामकरण संबंधी दृष्टि का परिचय मिलता है, जिसमें शुक्ल जी उदार दिखाई देते है। शुक्ल जी ने 'उत्तरमध्यकाल' के अन्तगर्त इस काल को 'रीतिकाल' स्वीकार किया है। डॉ महेंद्र कुमार भी विषय चयन के आधार पर इस काल का नामकरण 'रीतिकाल' स्वीकार करते है। इनका मानना है, 'प्रत्येक कवि द्वारा श्रृंगार को न्यूनाधिक रूप से ग्रहण किया जाना भी तो एक विशेष प्रकार की रीति (पद्धति) ही है।'[7] वस्तुतः इस काल का उत्तरमध्यकाल के अन्तगर्त 'रीतिकाल'नामकरण जो कि शुक्ल जी ने दिया है, उचित दिखाई देता है।

साहित्येतिहासकारों की दृष्टि को कालविभाजन के सन्दर्भ में देखें तो शुक्ल जी ने इस काल को तीन प्रकरणों में विभाजित किया है-सामान्य परिचय, रीतिग्रंथकार कवि और रीतिकाल के अन्य कवि। शुक्ल जी का मानना है कि काल विभाजन का कोई पुष्ट आधार होना चाहिए।'रीतिकाल के भीतर रीतिबद्ध की जो परम्परा चली उसका उपविभाग करने का कोई संगत आधार मुझें नहीं मिला, रचना के स्वरुप आदि में कोई भेद निरूपित किए बिना विभाग कैसे किया जा सकता है? किसी काल के विस्तार को लेकर यों ही पूर्व और उत्तर नाम देकर दो हिस्से कर डालना ऐतिहासिक विभाग नहीं कहला सकता।'[8]

शुक्ल जी के बाद हजारीप्रसाद द्विवेदी 'उत्तरमध्यकाल' का काल विभाजन चार उप-विभागों-में करते है- रीतिग्रंथों का सामान्य विवेचन, प्रमुख रीतिग्रंथकार, रीतिकाल के लोकप्रिय कवियों की विशेषता और रीतिमुक्त काव्यधारा। विश्वनाथप्रसाद मिश्र इस काल का विभाजन रीतिबद्ध काव्यधारा और रीतिमुक्त काव्यधारा के रूप में और फिर इसके उपविभाग क्रमशः लक्षणबद्ध काव्य, लक्ष्यकाव्य एवं रहस्योंन्मुखी काव्य, शुद्धप्रेम काव्य के रूप में करते है। आचार्य शुक्ल, द्विवेदी और विश्वनाथप्रसाद मिश्र का काल विभाजन उचित प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः उत्तरमध्यकाल का इस काल की प्रवृति के अनुसार रीतिबद्ध काव्य, रीतिसिद्ध काव्य, रीतिमुक्त काव्य और रीतिइतर काव्य (प्रशस्तिपरक काव्य, नीतिपरक काव्य, भक्तिपरक और संतकाव्य) के रूप में काल विभाजन करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है

साहित्येतिहासकारों की 'उत्तरमध्यकाल' के सीमांकन सम्बंधित दृष्टि पर विचार करें तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'उत्तरमध्यकाल' का सीमांकन संवत् 1700 से संवत् 1900 तक माना है। डॉ महेंद्र कुमार, शुक्ल जी के सीमांकन को स्वीकार नहीं करते। इनका मानना है कि 'निश्चित संवतों को स्वीकार करने में सबसे बड़ी आपत्ति यह होती है कि उन रीति कवियों के कतिपय ग्रन्थ इनसे आगे पीछे -रचे जाने के कारण

रीतिकाल की परिधि में नहीं आ पाते, जिन्हें वे स्वयं ही इस युग में परिगणित कर चुके है।[9]डॉ महेंद्र कुमार 'उत्तरमध्यकाल'का सीमांकन सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक मानते है और इस काल के आदि एवं अंत के दोनों ओर लगभग 20-20 वर्ष का समय जोड़ने को सही मानते है क्योंकि किसी भी साहित्यिक प्रवृति के बनने में कुछ समय लगता है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल का आरम्भ संवत् 1600 के आस-पास से मानते है और संवत् 1600 से 1700 तक के काल को ये प्रस्तावनाकाल के रूप में देखते है। संवत् 1800 से 1875 तक के काल को अवसान काल के रूप में देखते है। साहित्येतिहासकारों की सीमांकन संबंधी दृष्टि में डॉ महेंद्र कुमार की दृष्टि उचित दिखाई देती है।

'उत्तरमध्यकाल' में काव्यशास्त्र संबंधी चिंतन को साहित्येतिहासकारों ने एकमत से संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परम्परा का अनुकरण माना हैं और इनमें मौलिकता के अभाव को रेखांकित किया है। शुक्ल जी इसे 'देवयोग से संस्कृत साहित्यशास्त्र के इतिहास की हिंदी में उद्धरणी ' के रूप में देखते हैं। इनका मानना है कि आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी इस काल में नहीं हुआ।[10]हजारी प्रसाद द्विवेदी, शुक्ल जी की दृष्टि से सहमत दिखाई देते है। ये लिखते है-'काव्यशास्त्र का सांगोपांग विवेचन करने वाले कवियों ने कोई भी नई बात नहीं कही।'[11]

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी शुक्ल जी और द्विवेदी जी के उत्तरमध्यकाल के काव्यशास्त्रीय संबंधी दृष्टि से सहमत ही दिखाई देते हैं। इनका मानना है कि- 'उन्होंने संस्कृत के ग्रंथों की सी न पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष की विस्तृत योजना की और न कोई नूतन विचारसरणी ही प्रस्तुत की।'[12]साहित्येतिहास्कारों ने उत्तरमध्यकाल के काव्यशास्त्रीय चिंतन में मौलिकता के अभाव के कारणों पर विचार किया है।इसका एक कारण गद्य का अभाव माना है। दूसरा इस काव्य के श्रोताओं को माना है जिनमें सूक्ष्म तर्क की कर्कश मीमांसा सुनने की न तो रूचि थी और न धैर्य ही था।[13]काव्यशिक्षा देने को भी इसका एक प्रमुख कारण माना है। केशव ने अपने ग्रन्थ 'कविप्रिया'की रचना इसी उद्देश्य से की थी। आचार्य शुक्ल इन्हें कवि मानते है आचार्य नहीं। डॉ नगेन्द्र 'हिन्दी साहित्य के वृहद इतिहास' में रीतिआचार्यों के योगदान को रेखांकित करते हुए लिखते हैं 'उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा को हिंदी में सरस रूप में अवतरित किया।इस प्रकार हिंदी को शास्त्र चिंतन की प्रौढी प्राप्त हुई।'[14]वस्तुतः उत्तरमध्यकाल में काव्यशास्त्र संबंधी जितना भी चिंतन हुआ वह निश्चित ही संस्कृत के ग्रंथों का आधार लिए हुए था परंतु उसने हिंदी में काव्यशास्त्र का ज्ञान तो कराया ही है। इसका अपना महत्व है।

इस युग की प्रवृतियों के सन्दर्भ में साहित्येतिहासकारों की दृष्टि को देखें तो आचार्य शुक्ल रीतिबद्ध काव्य लिखने वाले कवियों को रीतिग्रंथकार मानते हैं। इन्होंने रीतिग्रंथों की परम्परा का आरम्भ चिंतामणि त्रिपाठी से माना है। शुक्ल जी रीति ग्रंथों के विकास को साहित्य के विकास में बाधा के रूप में देखते है।उनका मानना है कि रीति ग्रंथकारों की दृष्टि संकुचित हो गयी और वाग्धारा बंधी हुई नालियों में प्रवाहित होने लगी। द्विवेदी जी शुक्ल जी की भाँति ही इसे 'रीति काव्य'मानते हैं। चिंतामणि, मतिराम, भिखारीदास आदि को प्रमुख रीति ग्रंथकारों के रूप में देखते हैं। इस काव्य का मूल स्वर एक प्रकार की मानसिक थकान से पिंड छुड़ाने का बताते हैं। रीति काव्य के कवि की मनोवृति को इन्होंने सब और से सिमटी मनोवृत्ति का विराम स्थान माना है जो वास्तविक जीवन की कठोरताओं पर आधारित नहीं है एवं इसके आधार फलक को भी सीमित, संकुचित और संकरा मानते हैं।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने रीतिबद्ध काव्य को दरबारी काव्य माना है। ये इस काव्य की तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार करते हैं, कि आखिर क्यों ऐसा काव्य लिखा गया जिसको शुक्ल जी वाग्धारा में बंधी हुई नालियों में प्रवाहित और द्विवेदी जी संकुचित मानसिकता का काव्य मानते है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इस काव्य के रचयिताओं की परिस्थितियों और युग की मांग के कारणों का समुचित विवेचन प्रस्तुत करते है। वे लिखते है- 'मध्ययुगीन रीतिबद्ध कवियों ने अपनी रचनाएं समय के अनुकूल परिस्थितिवश और अपने साहित्य की मानरक्षा के विचार से की थी।उनका मुक्तक कला-प्रधान, संगीत प्रधान होना अनिवार्य था उन्होंने जो अनेक प्रकार की उदभावनाएँ की है उसके लिए वे समय की गति से विवश थे।जान- बूझकर उन्होंने काव्य का स्वरुप विकृत नहीं किया है। और रही घोर श्रृंगारिकता की तो, विपरीत रति और सुरतान्त के वर्णन संस्कृत और प्राकृत की

परम्परा में पहले ही से चले आ रहे थे।फिर भी ऐसे वर्णनों के नाम पर जितनी कुत्सा की जाती है उतने अधिक परिणाम में ऐसे वर्णन मिलते नहीं।'[15]

आचार्य शुक्ल,द्विवेदी और विश्वनाथप्रसाद मिश्र में रीतिबद्ध काव्य की प्रवृति पर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने विस्तारपूर्वक और गंभीर विवेचन किया है जो वस्तुतः उपयुक्त दिखाई देता है।

रीतिसिद्ध काव्य प्रवृति के परिप्रेक्ष्य में साहित्येतिहासकारों की दृष्टि देखें तो उत्तरमध्यकाल में रीतिसिद्ध कवि उन्हें कहा गया जिन्होंने कोई लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखा बल्कि लक्ष्य ग्रन्थ लिखें है। इनमें बिहारी प्रमुख है।आचार्य शुक्ल ने बिहारी को रीतिग्रंथकार कवियों में रखा है और इनकी बिहारी सतसई को श्रृंगार रस के ग्रंथों में सबसे लोकप्रिय माना है।इनकी भाषा को चलती होने पर भी साहित्यिक होना स्वीकार किया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के विचार चिंतन को ही आगे बढ़ाते हुए इन्हें रीतिकाल के लोकप्रिय कवियों की श्रेणी में रखा है। इनकी सतसई को गाथा सप्तशती की परम्परा से जोड़कर देखा है और बिहारी के समकालीन कवियों देव,मतिराम एवं पदमाकर के बीच इनके काव्य का मूल्यांकन किया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'रीतिसिद्ध कवि'उन्हें माना है जिन्होंने रचनाएँ तो रीति की बंधी परिपाटी के अनुकूल ही है परंतु लक्षणग्रंथ प्रस्तुत न करके स्वतंत्र रूप से रचनाएँ की है। इनका मानना है कि ये रीति से बंधे भी थे और उससे कुछ स्वतंत्र होकर भी चलते थे।'भले ही रीतिमुक्त कवियों से इनका मेल न खाता हो,पर वे शुद्ध रीतिबद्ध कवियों के बीच नहीं बैठाए जा सकते।यदि बैठाए जायेंगे तो अपनी विशेषता के कारण पृथक-चमचमाते रहेंगे।'[16]इन्होंने बिहारी का सतसई के दोहों, भाषा एवं अन्य सतसई कवियों के सन्दर्भ में रीतिसिद्ध कवि बिहारी का मूल्यांकन किया है।

उत्तरमध्यकाल में साहित्येतिहासकारों की दृष्टि को रीतिमुक्त काव्य के सन्दर्भ में देखें तो रीतिमुक्त काव्य वह काव्य है जो रीति की परिपाटी और रूढ़ी से मुक्त है। आचार्य शुक्ल का मानना है कि इन्हें कोई बंधन नहीं था,जिस भाव की कविता जिस समय सूझी ये लिख गए। शुक्ल जी रसखान, घनानंद , आलम, और ठाकुर आदि को इसी श्रेणी में रखते है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रीतिमुक्त काव्य में कई प्रवृतियों को रखा है।ये लिखते है- 'कुछ तो रीतिमुक्त श्रृंगारी कवितायें है, कुछ पौराणिक और लौकिक प्रबंध काव्य है, कुछ नीति और उपदेश-विषयक कवितायें है और कुछ भक्ति और ज्ञान-विषयक उपदेश के काव्य है। [15]इन्होंने रीतिमुक्त-श्रृंगार कवियों में असनी वाले बंदीजनबेनी, सेनापति, बनवारी, द्विजदेव, आलम, रसनिधि, बोधा और ठाकुर को रखा है। विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मानना है कि ये रीति में बंधना नहीं चाहते थे इसी से इन्हें 'रीति मुक्त'या 'स्वछंद'कवि कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। इन्होंने भी रसखान, बोधा, ठाकुर, घनानंद और द्विजदेव को प्रमुख रीतिमुक्त कवि माना है। शुक्ल जी ने इन्हें 'प्रेम की पीर' का कवि कहा है और इन कवियों की संवेदना एवं भाषा दोनों पर ही समुचित विचार किया है। तो विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इन का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है।

उत्तरमध्यकाल में 'रीतिइतर काव्य' लिखने की परम्परा भी मिलती है। इनमें प्रशस्तिपरक काव्य, नीतिपरक काव्य, भक्तिपरक काव्य और संत काव्य को शामिल किया जा सकता है। साहित्येतिहासकारों में शुक्ल जी ने भूषण को वीर रस का कवि माना है और इनका महत्व इनकी वीर काव्य की रचनाओं से ही माना है। हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि शुक्ल जी से प्रभावित दिखाई देती है। ये भूषण की कविता को 'सोए हुए समाज को उद्‌बुद्ध करने की शक्ति'के रूप में देखते है। विश्वनाथप्रसाद मिश्र भूषण के काव्य को शुद्ध वीरकाव्य मानते है। ये प्रशस्तिपरक काव्य के अन्य कवियों में मान कवि, सूदन, गोरेलाल कवि आदि भी को भी शामिल करते है। परंतु साहित्येतिहास कारों ने भूषण को ही प्रमुख माना है।
नीतिपरक काव्य के परिप्रेक्ष्य में साहित्येतिहासकारों की दृष्टि को देखें तो शुक्ल जी ने इसे नीति के फुटकल पद्य कहने वालों के रूप में और इन्हें कवि न मानकर सुक्तिकार माना है। वृन्द, गिरिधर, घाघ और बैताल को शुक्ल जी इसी कोटि में रखते है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नीति काव्य का सम्बन्ध भारतीय परंपरा से जोड़कर देखा है और वृन्द, बैताल एवं गिरिधर कविराय को प्रसिद्ध नीति कवि माना है। विश्वनाथप्रसाद मिश्र उत्तरमध्यकाल के नीतिकारों में रहीम और दीन दयालगिरि को साहित्यिक कोटि का नीतिकार, वृन्द को मध्यममार्गी और गिरिधर को शुद्ध नीति कर्ता के रूप में देखते है।

उत्तरमध्यकाल के भक्तिपरक काव्य के सम्बन्ध में शुक्ल जी का मानना है कि ये पुराने भक्तों के ढंग पर ही लेखे गए जिनमें भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद है। शुक्ल जी भक्तवर नागरीदास को प्रमुख भक्त कवि मानते है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी नागरीदास को भक्त कवि माना है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भक्तिपरक काव्य के सन्दर्भ में मौन दिखाई देते है।साहित्येतिहासकारों में डॉ बच्चन सिंह ने अपने साहित्येतिहास ग्रन्थ में भक्तिपरक काव्य का नोटिस लेते हुए नागरीदास के साथ-साथ चाचा हितवृन्दावन दास, भगवत रसिक, हठी जी और अलबेली अली को भी प्रमुख भक्त कवि माना है।

उत्तरमध्यकाल के संत काव्य के परिप्रेक्ष्य में सहित्येतिहासकारों की दृष्टि देखें तो शुक्ल जी इन्हें ज्ञानोपदेशक के रूप में देखते है जो ब्रह्यज्ञान और वैराग्य की बातों को पद्य में कहते है। शुक्ल जी इनमें से कुछ को 'पद्यकार' और कुछ को उच्च कोटि के कवि मानते है। द्विवेदी जी और विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की दृष्टि इस काल के संत काव्य पर मौन है। परंतु डॉ बच्चन सिंह ने इस काल के संत कवियों में यारी साहब, दरिया साहब, जगजीवन दास, पलटू साहब, तुलसी साहब, सहजोबाई और दयाबाई आदि को प्रमुख माना है।

'उत्तरमध्यकाल' की भाषा संबंधी साहित्येतिहासकारों की दृष्टि पर विचार करें तो शुक्ल जी इस काल की भाषा को व्याकरण द्वारा व्यवस्थित किये जाने पर बल देते और इसके अभाव में शोभ प्रकट करते है। इस काल की भाषा में ब्रज और अवधी का कवि की इच्छानुसार सम्मिश्रण को शुक्ल जी भाषा की गड़बड़ी के रूप में देखते है। इनका शिक्षित जनता वाला प्रतिमान उत्तरमध्यकाल की भाषा पर भी दिखाई देता है- 'परंपरागत इतिहास का कम अभ्यास रखने वाले साधारण कवियों ने कहीं-कहीं 'खुसबोयन' आदि उनके विकृत शब्दों को देखकर शिक्षितों एक प्रकार की विरक्ति सी होती है और उनकी कविता गवारों की सी लगती है।'[16]शुक्ल जी इस काल के कवियों का प्रिय छंद कवित और सवैये को मानते है। रामविलास शर्मा ने रीति काव्य की चाहे जितनी आलोचना की हो परंतु इसकी भाषा के सम्बन्ध में वह लिखते है- 'इन कवियों से आधुनिक हिंदी कवि जो बात सबसे ज्यादा सीख सकते है, वह है शब्द-चयन और शब्द-योजना। इनकी भाषा अत्यंत सरल है,अस्पष्टता और दुरूहता का प्रायः अभाव है। तत्सम शब्दों की तुलना में यहाँ तदभव रूपों पर जोर है। हिंदी भाषा की कुछ जातीय विशेषतायें जितनी यहाँ निखरी है, उतना आधुनिक हिंदी कविता में नहीं।[18]

डॉ नामवर सिंह ने अपने एक लेख 'रीतिकाव्य: पुनर्विचार' में रीतिकाल की भाषा पर विचार किया है और इसे उर्दू के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाली, उसे टक्कर देने वाली माना है।

वस्तुतः साहित्येतिहासकारों ने उत्तर मध्यकाल को अपनी - अपनी दृष्टि से परखने की कोशिश की है। शुक्ल जी की दृष्टि विधेयवादी है, हजारी प्रसाद द्विवेदी परम्परा को महत्व देते है तो विश्वनाथ प्रसाद मिश्र उत्तरमध्यकाल को युगीन परिस्थितियों में रखकर देखते है। परंतु एक बात जो इन तीनों ही साहित्येतिहासकारों की दृष्टि का उपेक्षा पात्र बनी, वह है 'स्त्री लेखन'। क्या उत्तरमध्यकाल में कोई भी स्त्री लेखिका नहीं थी? इनके साहित्येतिहास लेखन में एक भी रीतिकालीन स्त्री लेखिका का नाम तक नहीं है। हाँ इस सन्दर्भ में डॉ बच्चन सिंह ने अपने साहित्येतिहास में रीतिकालीन संत काव्य परम्परा में 'दयाबाई' और 'सहजोबाई' को शामिल किया है। डॉ सावित्री सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ'में 'उत्तरमध्यकाल' की स्त्री लेखिकाओं के काव्य पर गंभीरता से विचार किया है। प्रवीणराय, रूपवती बेगम, शेख रंगरेज एवं सुन्दरकली इत्यादि अनेक स्त्री लेखकाओं को शामिल किया है।

वस्तुतः साहित्येतिहासकारों की उत्तरमध्यकाल संबंधी दृष्टि उसके रीति पक्ष पर ही अधिक केंद्रित है। साहित्येतिहास लेखन में केवल साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियों एवं कवियों पर ही बल नहीं दिया जाता, बल्कि गौण कवियों एवं प्रवृत्तियों को दिखाना भी साहित्येतिहासकार का लक्ष्य होता है। हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल की आलोचना उसके रीति पक्ष को लेकर अधिक की गई है जबकि उस काल के साहित्य में अन्य प्रवृत्तियाँ भी मौजूद है। अतः आज जब हमारे पास साहित्येतिहास को देखने की अनेक दृष्टियाँ और सामग्री मौजूद है तो इस काल के साहित्य पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. आनंदनारायण शर्मा: हिंदी साहित्य का इतिहास, अनुपम प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1987, पृ० 16

2. मैनेजर पाण्डेय: साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, 2009, पृ० 4
3. विश्वनाथप्रसाद मिश्र: हिंदी साहित्य का अतीत(भाग दो), वाणी वितान प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1960, पृ० 361
4. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, नवीनतम संस्करण, पृ० 171
5. सं० नगेन्द्र, हरदयाल: हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पैपर बैक्स, तीसरा संस्करण, 2009, पृ० 258
6. वही, पृ० 260
7. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 5
8. सं० नगेन्द्र, हरदयाल: हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 260
9. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 167
10. हजारीप्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, 2010, पृ० 166
11. विश्वनाथप्रसाद मिश्र: हिंदी साहित्य का अतीत(भाग दो), पृ०331
12. हजारीप्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० 163
13. सं० नगेन्द्र: हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास, पृ० 497
14. विश्वनाथप्रसाद मिश्र: हिंदी साहित्य का अतीत(भाग दो), पृ० 368
15. वही, 549
16. हजारीप्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० 182
17. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 170
18. रामविलास शर्मा: परम्परा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, पृ० 100

संदर्भ ग्रन्थ

आधार ग्रन्थ

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, 2010
3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका
4. मिश्र, विश्वनाथप्रसाद, हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग 2), वाणी प्रकाशन, 1960
5. सं. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2009

सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय, मैनेजर, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, 2009
2. शर्मा, आनन्दनारायण, हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन, अनुपम प्रकाशन, 1987
3. शर्मा, नलिन विलोचन, साहित्य का इतिहास दर्शन, बेनी माधव प्रेस, राँची, 1960
4. राजे, सुमन, साहित्येतिहास: संरचना और स्वरूप, ग्रन्थ प्रकाशन, 1975
5. सं. शर्मा, कृष्णदत्त; शर्मा, हरिमोहन, साहित्य इतिहास और आधुनिक बोध, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2004
6. सिंह, नामवर, इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2014
7. सिंह, योगेन्द्र प्रताप, हिन्दी साहित्य का इतिहास और उसकी समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2016